National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2025; 1(63): 180-184
© 2025 NJHSR
www.sanskritarticle.com

जितेंद्र प्रताप सेन
शोधार्थी,
छत्रसाल बुंदेलखंड विश्विद्यालय,
छतरपुर

शोध निर्देशक
डॉ. रोशनलाल अहिरवार
सहायक प्राध्यापक,
शोध केंद्र शासकीय कन्या महाविद्यालय,
उत्कृष्ट महाविद्यालय, सागर

Correspondence:
जितेंद्र प्रताप सेन
शोधार्थी,
छत्रसाल बुंदेलखंड विश्विद्यालय,
छतरपुर

तुलसीराम के मुर्दहिया में विद्यालयीन जीवन का संघर्ष

जितेंद्र प्रताप सेन , डॉ. रोशनलाल अहिरवार

सारांश

हिंदी दलित आत्मकथाओं में तुलसीराम की मुर्दहिया एक महत्वपूर्ण कृति है, जो हाशिए पर खड़े समाज के शैक्षिक, सामाजिक और मानसिक संघर्षों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती है। यह आत्मकथा लेखक के बाल्यकाल और किशोरावस्था के अनुभवों के माध्यम से भारतीय शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त जातिगत भेदभाव, आर्थिक अभाव और सामाजिक उपेक्षा को उजागर करती है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य मुर्दहिया में चित्रित विद्यालयीन जीवन के संघर्षों का विश्लेषण करना है। विद्यालय, जो सामाजिक समानता और उन्नति का माध्यम माना जाता है, तुलसीराम के जीवन में अपमान, तिरस्कार और शोषण का केंद्र बनकर उभरता है। गुरु-शिष्य संबंध, पाठ्यक्रम की प्रकृति, सहपाठी व्यवहार तथा विद्यालयी वातावरण इन सभी में जाति आधारित भेदभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यह अध्ययन दर्शाता है कि किस प्रकार शिक्षा, जो मुक्ति का साधन होनी चाहिए, दलित वर्ग के लिए संघर्ष और पीड़ा का कारण बन जाती है। मुहिया न केवल व्यक्तिगत संघर्ष की कथा है, बल्कि भारतीय समाज और शिक्षा व्यवस्था की विसंगतियों का सशक्त दस्तावेज भी है।

मुख्यशब्द- तुलसीराम, मुर्दहिया विद्यालयीन जीवन, सामाजिक और मानसिक संघर्ष, बाल्यकाल, किशोरावस्था, भारतीय शिक्षा व्यवस्था, जातिगत भेदभाव, सामाजिक समानता।

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में आत्मकथा विधा का विशेष महत्व है, क्योंकि इसके माध्यम से लेखक अपने निजी अनुभवों के साथ-साथ सामाजिक यथार्थ को भी उद्घाटित करता है। विशेष रूप से दलित आत्मकथाएँ भारतीय समाज की उन परतों को सामने लाती हैं, जिन्हें परंपरागत साहित्य में लंबे समय तक उपेक्षित रखा गया। तुलसीराम की आत्मकथा मुर्दहिया इसी परंपरा की एक सशक्त कड़ी है। यह कृति न केवल एक व्यक्ति के जीवन संघर्ष की कथा है, बल्कि भारतीय समाज की जातिगत संरचना, सामाजिक अन्याय और शिक्षा व्यवस्था की विडंबनाओं का जीवंत दस्तावेज भी है।

मुर्दहिया में तुलसीराम ने अपने जीवन के विभिन्न पड़ावों का वर्णन किया है, जिनमें उनका विद्यालयीन जीवन विशेष रूप से मार्मिक और संघर्षपूर्ण रहा है। शिक्षा को सामान्यतः सामाजिक परिवर्तन और समान अवसरों का माध्यम माना जाता है, किंतु तुलसीराम का अनुभव इस धारणा को चुनौती देता है। उनके लिए विद्यालय ज्ञान का मंदिर न होकर जातिगत भेदभाव, अपमान और मानसिक यातना का स्थल बन जाता है। यह आत्मकथा स्पष्ट करती है कि किस प्रकार दलित बच्चों के लिए शिक्षा प्राप्त करना केवल आर्थिक संघर्ष नहीं, बल्कि सामाजिक और मानसिक लड़ाई भी है।

विद्यालयीन जीवन में तुलसीराम को जिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, वे भारतीय ग्रामीण समाज की वास्तविकता को उजागर करती हैं। विद्यालय में बैठने की व्यवस्था से लेकर पानी पीने,

भोजन करने और अध्यापकों के व्यवहार तक हर स्तर पर जाति की दीवार खड़ी दिखाई देती है। शिक्षक, जिन्हें ज्ञान और नैतिकता का प्रतीक माना जाता है, स्वयं जातिगत पूर्वाग्रहों से ग्रस्त दिखाई देते हैं। वे तुलसीराम और अन्य दलित विद्यार्थियों को उपेक्षा, तिरस्कार और दंड के माध्यम से हतोत्साहित करते हैं। इस प्रकार विद्यालय, जो सामाजिक समानता का केंद्र होना चाहिए, सामाजिक असमानता को और अधिक गहरा करता है।

मुर्दहिया में विद्यालयीन पाठ्यक्रम और शिक्षा पद्धति पर भी अप्रत्यक्ष प्रश्न उठते हैं। पाठ्यपुस्तकों में वर्णित आदर्श, नैतिकता और समानता के मूल्य तुलसीराम के वास्तविक जीवन अनुभवों से मेल नहीं खाते। विद्यालय में पढ़ाई जाने वाली कहानियाँ और उपदेश एक आदर्श समाज की कल्पना प्रस्तुत करते हैं, जबकि विद्यालयी व्यवहार उसके ठीक विपरीत होता है। यह विरोधाभास तुलसीराम के मन में गहरी पीड़ा और विद्रोह की भावना उत्पन्न करता है। वे यह महसूस करते हैं कि शिक्षा व्यवस्था दलितों के अनुभवों और यथार्थ को स्वीकार करने में असफल है।

आर्थिक अभाव भी तुलसीराम के विद्यालयीन संघर्ष का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। गरीबी के कारण उनके पास उचित वस्त्र, पुस्तकें और अन्य शैक्षिक संसाधन नहीं होते। इसके बावजूद वे शिक्षा प्राप्त करने के लिए निरंतर संघर्ष करते हैं। यह संघर्ष केवल व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा का परिणाम नहीं, बल्कि सामाजिक बंधनों को तोड़ने की आकांक्षा से प्रेरित है। शिक्षा उनके लिए सम्मान, पहचान और मुक्ति का माध्यम बन जाती है।

मुर्दहिया में विद्यालयीन जीवन का संघर्ष केवल अतीत की कथा नहीं है, बल्कि यह आज भी प्रासंगिक है। यह आत्मकथा हमें यह सोचने पर मजबूर करती है कि क्या हमारी शिक्षा व्यवस्था वास्तव में समावेशी है। तुलसीराम का अनुभव बताता है कि सामाजिक समानता के बिना शिक्षा अधूरी है। इस प्रकार मुर्दहिया विद्यालयीन जीवन के संघर्षों के माध्यम से भारतीय समाज की संरचनात्मक असमानताओं पर गहन प्रकाश डालती है।

मुर्दहियाः दलित चेतना और शिक्षा का यथार्थ

हिंदी दलित आत्मकथा साहित्य में तुलसीराम की मुर्दहिया एक महत्वपूर्ण और सशक्त कृति मानी जाती है। यह आत्मकथा केवल लेखक के व्यक्तिगत जीवन की कथा नहीं है, बल्कि दलित समाज की सामूहिक पीड़ा, संघर्ष और चेतना का जीवंत दस्तावेज है। मुर्दहिया में चित्रित अनुभव भारतीय समाज की जातिगत संरचना और शिक्षा व्यवस्था के वास्तविक स्वरूप को उजागर करते हैं। विशेष रूप से शिक्षा के संदर्भ में यह कृति दलित चेतना के विकास और उसकी सीमाओं को स्पष्ट करती है।

दलित चेतना का मूल उद्देश्य सामाजिक अन्याय, शोषण ओर भेदभाव के विरुद्ध प्रतिरोध है। मुर्दहिया में यह चेतना तुलसीराम के बाल्यकालीन अनुभवों के माध्यम से विकसित होती दिखाई देती है। शिक्षा, जो सामान्यतः सामाजिक उत्थान और समान अवसर का माध्यम मानी जाती है, तुलसीराम के जीवन में संघर्ष और अपमान का कारण बन जाती है। विद्यालय में बैठने की व्यवस्था, शिक्षकों का व्यवहार, सहपाठियों की मानसिकता- इन सभी में जातिगत भेदभाव स्पष्ट रूप से झलकता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा व्यवस्था स्वयं सामाजिक असमानताओं से मुक्त नहीं है।

मुर्दहिया में शिक्षा का यथार्थ आदर्शों से भिन्न दिखाई देता है। पाठ्यपुस्तकों में समानता, नैतिकता और मानवता के मूल्य पढ़ाए जाते हैं, किंतु व्यवहार में इन मूल्यों का अभाव है। यह विरोधाभास दलित छात्रों के मन में हीनता और असंतोष की भावना को जन्म देता है। तुलसीराम का अनुभव बताता है कि दलितों के लिए शिक्षा केवल बौद्धिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि आत्मसम्मान और अस्तित्व की लड़ाई भी है। यही संघर्ष धीरे-धीरे दलित चेतना को जागृत करता है।

गरीबी मुर्दहिया में शिक्षा के यथार्थ का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष है। आर्थिक अभाव के कारण तुलसीराम को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, फिर भी शिक्षा के प्रति उनकी लगन कम नहीं होती। शिक्षा उनके लिए सामाजिक बंधनों को तोड़ने और सम्मानजनक जीवन की ओर बढ़ने का साधन बन जाती है। इस प्रकार शिक्षा, भले ही पीड़ादायक अनुभवों से जुड़ी हो, दलित चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

मुर्दहिया यह भी स्पष्ट करती है कि दलित चेतना केवल पीड़ा की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि परिवर्तन की आकांक्षा है। तुलसीराम का शिक्षा के प्रति आग्रह सामाजिक न्याय और समानता की चाह को दर्शाता है। यह आत्मकथा पाठक को यह सोचने पर विवश करती है कि जब तक शिक्षा व्यवस्था समावेशी और संवेदनशील नहीं होगी, तब तक सामाजिक समानता की कल्पना अधूरी रहेगी। अतः मुर्दहिया में दलित चेतना और शिक्षा का यथार्थ परस्पर गहराई से जुड़े हुए हैं। यह कृति शिक्षा को दलित मुक्ति का साधन मानते हुए उसकी सीमाओं और चुनौतियों को भी उजागर करती है। इस दृष्टि से मुर्दहिया न केवल साहित्यिक कृति है, बल्कि भारतीय समाज और शिक्षा व्यवस्था के आत्ममंथन का सशक्त माध्यम भी है।

विद्यालय और जातिगत भेदभाव की त्रासदी

विद्यालय को समाज में ज्ञान, नैतिकता ओर समानता का केंद्र माना जाता है। यह वह स्थान हे जहाँ बच्चों को समान अवसर, लोकतांत्रिक मूल्य और मानवीय संवेदनाएँ सिखाई जाती हैं। किंतु भारतीय सामाजिक संरचना में विद्यालय भी जातिगत भेदभाव से अछूता नहीं रह सका है। विद्यालय में व्याप्त जातिगत भेदभाव न केवल शिक्षा के उद्देश्य को विफल करता है, बल्कि समाज में असमानता और अन्याय को भी स्थायी रूप देता है। यही कारण है कि विद्यालय और जातिगत भेदभाव की स्थिति एक गंभीर सामाजिक त्रासदी के रूप में सामने आती है।

ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में विद्यालयों में जाति आधारित भेदभाव अधिक स्पष्ट रूप में दिखाई देता है। दलित विद्यार्थियों के लिए अलग बैठने की व्यवस्था, उनसे अलग व्यवहार, तथा सार्वजनिक सुविधाओं के उपयोग पर प्रतिबंध जैसी स्थितियाँ आज

भी देखने को मिलती हैं। शिक्षकों का पक्षपातपूर्ण रवैया इस भेदभाव को और गहरा कर देता है। शिक्षक, जिन्हें समानता और न्याय का प्रतीक होना चाहिए, कई बार स्वयं सामाजिक पूर्वाग्रहों के वाहक बन जाते हैं। इसका सीधा प्रभाव विद्यार्थियों के आत्मसम्मान और शैक्षिक विकास पर पड़ता है।

विद्यालयी पाठ्यक्रम और शिक्षण प्रक्रिया भी अप्रत्यक्ष रूप से जातिगत भेदभाव को बनाए रखने में भूमिका निभाते हैं। पाठ्यपुस्तकों में वर्णित आदर्श समाज और समानता के मूल्य विद्यालय के वास्तविक वातावरण से मेल नहीं खाते। दलित विद्यार्थियों के जीवन अनुभवों और संघर्षों को पाठ्यक्रम में पर्याप्त स्थान नहीं मिलता, जिससे वे स्वयं को शिक्षा व्यवस्था से अलग-थलग महसूस करते हैं। यह दूरी उनके भीतर हीनता और असंतोष की भावना को जन्म देती है।

जातिगत भेदभाव की यह त्रासदी केवल शारीरिक या सामाजिक स्तर तक सीमित नहीं रहती, बल्कि मानसिक और भावनात्मक रूप से भी विद्यार्थियों को प्रभावित करती है। निरंतर अपमान और उपेक्षा से दलित छात्रों में आत्मविश्वास की कमी, भय और तनाव उत्पन्न होता है। अनेक बार यह स्थिति विद्यालय छोड़ने (ड्रॉपआउट) तक ले जाती है। इस प्रकार विद्यालय, जो सामाजिक उन्नति का माध्यम होना चाहिए, सामाजिक बहिष्कार का केंद्र बन जाता है।

हालाँकि आधुनिक समय में शिक्षा नीतियों और संवैधानिक प्रावधानों के माध्यम से समानता स्थापित करने के प्रयास किए गए हैं, फिर भी व्यवहारिक स्तर पर जातिगत भेदभाव पूरी तरह समाप्त नहीं हो सका है। इस त्रासदी से मुक्ति के लिए आवश्यक है कि विद्यालयों में समावेशी वातावरण का निर्माण किया जाए। शिक्षकों को सामाजिक संवेदनशीलता का प्रशिक्षण दिया जाए और पाठ्यक्रम में हाशिए पर खड़े समुदायों के अनुभवों को स्थान मिले।

तुलसीराम का बाल्यकालीन शैक्षिक संघर्ष

तुलसीराम की आत्मकथा मुर्दहिया में उनका बाल्यकालीन जीवन भारतीय समाज की जातिगत संरचना और शिक्षा व्यवस्था की कठोर वास्तविकताओं को उजागर करता है। बाल्यावस्था, जो सामान्यतः सीखने, जिज्ञासा और सुरक्षित वातावरण से जुड़ी होती है, तुलसीराम के लिए निरंतर संघर्ष, अपमान और अभाव का काल बन जाती है। उनका शैक्षिक संघर्ष केवल व्यक्तिगत कठिनाइयों का परिणाम नहीं, बल्कि सामाजिक भेदभाव ओर आर्थिक असमानता की देन है।

तुलसीराम का विद्यालय में प्रवेश ही संघर्ष से भरा हुआ है। दलित परिवार से होने के कारण उन्हें प्रारंभसे ही उपेक्षा और तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। विद्यालय में बैठने की व्यवस्था, सहपाठियों का व्यवहार और शिक्षकों का दृष्टिकोण हर स्तर पर जातिगत भेदभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। कई बार उन्हें कक्षा में अलग बैठाया जाता है या उनकी उपस्थिति को महत्व नहीं दिया जाता। यह अनुभव बालमन पर गहरा आघात करता है और शिक्षा के प्रति भय तथा असुरक्षा की भावना उत्पन्न करता है।

गरीबी तुलसीराम के शैक्षिक संघर्ष को और अधिक गहन बना देती है। पर्याप्त वस्त्र, पुस्तकों और अध्ययन सामग्री का अभाव उनके लिए सामान्य स्थिति बन जाती है। कई बार उन्हें विद्यालय और घरेलू जिम्मेदारियों के बीच संतुलन बनाना पड़ता है। इसके बावजूद शिक्षा के प्रति उनकी लगन और सीखने की इच्छा कम नहीं होती। यह लगन उनके भीतर सामाजिक बंधनों को तोड़ने की आकांक्षा को दर्शाती है।

मुर्दहिया में तुलसीराम का बाल्यकालीन संघर्ष केवल बाहरी कठिनाइयों तक सीमित नहीं है, बल्कि मानसिक और भावनात्मक पीड़ा से भी जुड़ा हुआ है। बार-बार अपमानित होने से उनके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचती है, किंतु यहीं पीड़ा धीरे धीरे चेतना ओर प्रतिरोध में बदल जाती है। वे यह समझने लगते हैं कि उनका संघर्ष व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय से जुड़ा हुआ है। यहीं से दलित चेतना के बीज उनके भीतर अंकुरित होते हैं।

विद्यालयीन पाठ्यक्रम और आदर्श भी तुलसीराम के अनुभवों से मेल नहीं खाते। पाठ्यपुस्तकों में समानता और नैतिकता की बातें पढ़ाई जाती हैं, जबकि विद्यालयी व्यवहार इन मूल्यों के विपरीत होता है। यह विरोधाभास उनके मन में प्रश्न और असंतोष उत्पन्न करता है। शिक्षा उनके लिए केवल परीक्षा पास करने का साधन नहीं रह जाती, बल्कि सामाजिक सच्चाइयों को समझने का माध्यम बन जाती है। तुलसीराम का बाल्यकालीन शैक्षिक संघर्ष मुर्दहिया का केंद्रीय विषय है। यह संघर्ष न केवल एक व्यक्ति की पीड़ा को व्यक्त करता है, बल्कि दलित समाज की सामूहिक स्थिति को भी प्रतिबिंबित करता है। तुलसीराम का संघर्ष यह दर्शाता है कि शिक्षा, भले ही कठिन और पीड़ादायक हो, सामाजिक परिवर्तन और आत्मसम्मान की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम बन सकती है।

गुरु-शिष्य संबंध और सामाजिक असमानता

भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य संबंध को अत्यंत पवित्र, आदर्श और नैतिक मूल्यों का आधार माना गया है। गुरु को ज्ञान का प्रकाशक ओर शिष्य को संस्कारों का ग्रहणकर्ता माना जाता है। किंतु सामाजिक यथार्थ में यह संबंध अनेक बार सामाजिक असमानताओं से प्रभावित दिखाई देता है। विशेष रूप से जातिगत व्यवस्था ने गुरु-शिष्य संबंध को भी विषाक्त किया है, जिससे शिक्षा का मूल उद्देश्य विकृत हो जाता है।

पारंपरिक समाज में गुरु-शिष्य संबंध समानता और आत्मीयता पर आधारित होना चाहिए, परंतु व्यवहार में यह संबंध अक्सर सत्ता और प्रभुत्व का रूप ले लेता है। उच्च जाति से संबंधित गुरु और निम्न जाति के शिष्य के बीच संबंध में भेदभाव स्पष्ट दिखाई देता है। ऐसे शिष्यों को न केवल शैक्षिक रूप से उपेक्षित किया जाता है, बल्कि मानसिक ओर सामाजिक स्तर पर भी अपमानित किया जाता है। इससे शिष्य के मन में भय, हीनता और असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है।

सामाजिक असमानता का प्रभाव शिक्षण प्रक्रिया पर भी पड़ता है। शिक्षक का पक्षपातपूर्ण व्यवहार कक्षा के वातावरण को असंतुलित

बना देता है। कुछ शिष्यों को विशेष ध्यान और प्रोत्साहन मिलता है, जबकि दलित या वंचित वर्ग के शिष्यों को कठोर अनुशासन और दंड का सामना करना पड़ता है। यह स्थिति शिक्षा को ज्ञान का माध्यम न बनाकर सामाजिक भेदभाव को बनाए रखने का उपकरण बना देती है।

गुरु-शिष्य संबंध में सामाजिक असमानता केवल व्यक्तिगत व्यवहार तक सीमित नहीं रहती, बल्कि संस्थागत रूप भी धारण कर लेती है। विद्यालयों में बैठने की व्यवस्था, उत्तर पूछने का अवसर और मूल्यांकन की प्रक्रिया-इन सभी में असमानता देखी जा सकती है। इस प्रकार शिष्य की योग्यता और परिश्रम के स्थान पर उसकी सामाजिक पहचान अधिक महत्वपूर्ण बन जाती है।

इस असमानता का सबसे गंभीर प्रभाव शिष्य के व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। निरंतर उपेक्षा और भेदभाव से शिष्य का आत्मविश्वास कमजोर होता है और उसकी सीखने की क्षमता प्रभावित होती है। कई बार प्रतिभाशाली विद्यार्थी भी इस असमान व्यवहार के कारण शिक्षा से विमुख हो जाते हैं। यह स्थिति समाज के लिए दीर्घकालिक क्षति का कारण बनती है। हालाँकि आधुनिक शिक्षा दर्शन गुरु-शिष्य संबंध को लोकतांत्रिक और संवादात्मक बनाने पर बल देता है, फिर भी व्यवहारिक स्तर पर सामाजिक असमानता पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। इस संबंध को समान और मानवीय बनाने के लिए आवश्यक है कि शिक्षकों में सामाजिक संवेदनशीलता, आत्मचिंतन और उत्तरदायित्व की भावना विकसित की जाए।

शिक्षा के माध्यम से सामाजिक मुक्ति की आकांक्षा

शिक्षा को सदेव सामाजिक परिवर्तन और मुक्ति का प्रभावी साधन माना गया है। भारतीय समाज जैसे जटिल और वर्ग जाति विभाजित ढाँचे में शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया नहीं, बल्कि शोषण, अन्याय और असमानता के विरुद्ध संघर्ष का माध्यम बन जाती है। वंचित और हाशिए पर खड़े समुदायों के लिए शिक्षा सामाजिक मुक्ति की आकांक्षा का प्रतीक है, जो उन्हें सम्मान, आत्मनिर्भरता और समान अधिकारों की ओर ले जाती है।

सामाजिक मुक्ति का तात्पर्य केवल आर्थिक उन्नति से नहीं है, बल्कि मानसिक, सांस्कृतिक और सामाजिक स्वतंत्रता से भी है। शिक्षा व्यक्ति को सोचने, प्रश्न करने और अपने अधिकारों को पहचानने की क्षमता प्रदान करती है। जब व्यक्ति सामाजिक रूढ़ियों और परंपराओं के तर्कहीन स्वरूप को समझने लगता है, तभी मुक्ति की चेतना विकसित होती है। इस दृष्टि से शिक्षा सामाजिक बंधनों को तोड़ने का वैचारिक आधार तैयार करती है।

दलित और वंचित वर्गों के संदर्भ में शिक्षा का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। ऐतिहासिक रूप से इन्हें ज्ञान, विद्यालय और शास्त्रों से वंचित रखा गया। ऐसे में शिक्षा उनके लिए केवल करियर का साधन नहीं, बल्कि सदियों पुराने उत्पीड़न के विरुद्ध प्रतिरोध का मार्ग है। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने शिक्षा को सामाजिक न्याय और मुक्ति का मूल आधार माना था। उनके अनुसार, शिक्षित व्यक्ति ही सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संगठित संघर्ष कर सकता है।

हालाँकि शिक्षा के माध्यम से सामाजिक मुक्ति का मार्ग सरल नहीं है। शिक्षा व्यवस्था स्वयं कई बार सामाजिक असमानताओं से ग्रस्त होती है। विद्यालयों और महाविद्यालयों में जातिगत भेदभाव, आर्थिक असमानता और सांस्कृतिक उपेक्षा जैसी समस्याएँ आज भी मौजूद हैं। इसके बावजूद शिक्षा की आकांक्षा कमजोर नहीं पड़ती, बल्कि यह संघर्ष और चेतना का रूप ले लेती है। कठिन परिस्थितियों में भी शिक्षा प्राप्त करने का आग्रह सामाजिक परिवर्तन की गहरी चाह को दर्शाता है।

शिक्षा के माध्यम से सामाजिक मुक्ति की आकांक्षा साहित्य में भी व्यापक रूप से अभिव्यक्त हुई है। दलित आत्मकथाएँ और साहित्य शिक्षा को सम्मान और आत्मपहचान के साधन के रूप में प्रस्तुत करते हैं। शिक्षा व्यक्ति को केवल रोजगार नहीं देती, बल्कि उसे समाज में अपनी आवाज़ उठाने का अधिकार भी प्रदान करती है। यही कारण है कि शिक्षा दलित चेतना के विकास का केंद्रीय तत्व बन जाती है। शिक्षा के माध्यम से सामाजिक मुक्ति की आकांक्षा भारतीय समाज के परिवर्तन की मूल शक्ति है। यह आकांक्षा व्यक्ति को आत्मसम्मान, समानता और न्याय की ओर अग्रसर करती है। जब शिक्षा व्यवस्था वास्तव में समावेशी और संवेदनशील बनेगी, तब शिक्षा सामाजिक मुक्ति के अपने उद्देश्य को पूर्ण रूप से साकार कर सकेगी।

मुर्दहिया में दलित छात्र की मानसिक पीड़ा

तुलसीराम की आत्मकथा मुर्दहिया दलित छात्र की विद्यालयीन और सामाजिक संघर्ष की गहन झलक प्रस्तुत करती है। इसमें केवल बाहरी सामाजिक और आर्थिक बाधाओं का वर्णन नहीं है, बल्कि मानसिक ओर भावनात्मक पीड़ा का भी विस्तार से चित्रण किया गया है। दलित छात्र के जीवन में यह मानसिक पीड़ा जातिगत भेदभाव, अपमान और सामाजिक उपेक्षा से जन्म लेती है, जो उनके शैक्षिक और व्यक्तिगत विकास पर गंभीर प्रभाव डालती है।

विद्यालय, जो सामान्यतः ज्ञान, आत्मविश्वास और सामाजिक उत्थान का केंद्र माना जाता है, तुलसीराम के जीवन में मानसिक पीड़ा का प्रमुख स्थल बन जाता है। शिक्षक और सहपाठियों द्वारा बार-बार किया गया तिरस्कार और भेदभाव शिष्य के मन में हीनता और भय पैदा करता है। बार-बार अपमानित होने की स्थिति में छात्र आत्म संकोच और असुरक्षा का अनुभव करता है। यह मानसिक पीड़ा उसकी सीखने की क्षमता को प्रभावित करती है और कई बार आत्मविश्वास की कमी का कारण बनती है।

मुर्दहिया में आर्थिक अभाव और सामाजिक उपेक्षा के कारण उत्पन्न तनाव भी मानसिक पीड़ा को बढ़ाते हैं। पर्याप्त वस्त्र, पुस्तकें या अन्य आवश्यक संसाधनों की कमी दलित छात्रों को दूसरों के सामने अलग और कमतर महसूस कराती है। इसके परिणामस्वरूप उनमें असंतोष, निराशा और कभी-कभी शिक्षा से विमुख होने की प्रवृत्ति विकसित होती है। तुलसीराम का अनुभव स्पष्ट करता है कि मानसिक पीड़ा केवल व्यक्तिगत स्तर तक सीमित नहीं रहती, बल्कि यह समाज में जातिगत असमानता की संरचना का परिणाम भी है।

साथ ही, मानसिक पीड़ा छात्र की सामाजिक चेतना और प्रतिरोध की क्षमता को भी प्रभावित करती है। निरंतर उत्पीड़न और उपेक्षा के बावजूद तुलसीराम में यह चेतना धीरे-धीरे विकसित होती है कि उनका संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय के विरुद्ध भी है। यही मानसिक संघर्ष उन्हें शिक्षा के माध्यम से अपने अधिकारों और सम्मान की मांग करने की दिशा में प्रेरित करता है। मानसिक पीड़ा और चेतना का यह मिश्रण दलित छात्र के अनुभव को गहरा और जटिल बनाता है।

मुर्दहिया यह भी दर्शाती है कि मानसिक पीड़ा केवल स्कूल के अनुभव तक सीमित नहीं है, बल्कि यह छात्र के पूरे जीवन दृष्टिकोण को प्रभावित करती है। अपमान और उपेक्षा की स्थितियाँ उनके आत्मसम्मान, सामाजिक व्यवहार और भविष्य की आकांक्षाओं में गहरी छाया छोड़ती हैं। मानसिक पीड़ा के बावजूद शिक्षा के प्रति उनकी लगन यह दर्शाती है कि कठिन परिस्थितियों में भी विद्या ही मुक्ति और आत्मसशक्तिकरण का माध्यम बन सकती है। मुर्दहिया में दलित छात्र की मानसिक पीड़ा न केवल व्यक्तिगत पीड़ा का प्रतिनिधित्व करती है, बल्कि यह समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव और असमानता की संरचना को भी उजागर करती है। तुलसीराम का अनुभव यह सिद्ध करता है कि मानसिक पीड़ा के बावजूद शिक्षा ही दलित चेतना और सामाजिक उत्थान का सबसे शक्तिशाली साधन है। यह आत्मकथा दलित छात्रों की मानसिक पीड़ा को समझने और सामाजिक सुधार की आवश्यकता पर प्रकाश डालने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

निष्कर्ष

तुलसीराम की आत्मकथा मुर्दहिया में चित्रित विद्यालयीन जीवन का संघर्ष भारतीय शिक्षा व्यवस्था और समाज की गहरी विसंगतियों को उजागर करता है। तुलसीराम का विद्यालयीन अनुभव यह सिद्ध करता है कि शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया नहीं, बल्कि सामाजिक सत्ता संरचनाओं से जुड़ा हुआ एक जटिल क्षेत्र है। विद्यालय, जो समानता और अवसर का प्रतीक माना जाता है, दलित वर्ग के लिए भेदभाव और अपमान का स्थल बन जाता है। मुर्दहिया में विद्यालयीन संघर्ष केवल व्यक्तिगत पीड़ा नहीं, बल्कि सामूहिक दलित अनुभव का प्रतिनिधित्व करता है। यह कृति हमें यह समझने में सहायता करती है कि सामाजिक न्याय और समानता के बिना शिक्षा अपने उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकती। तुलसीराम का संघर्ष हमें शिक्षा व्यवस्था को अधिक मानवीय, संवेदनशील और समावेशी बनाने की आवश्यकता का बोध कराता है। इस दृष्टि से मुर्दहियान केवल साहित्यिक कृति है, बल्कि सामाजिक चेतना और परिवर्तन का सशक्त माध्यम भी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

तुलसीराम, मुर्दहिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010।

ज्वाला चन्द्र चौधरी, "मुर्दहिया' दलित संस्कृति की गाथा", All Study Journal, Vol.1 Issue 1 Part A, 2019।

डॉ. तुलसीराम, "मुर्दहिया और दलित चेतना", हिंदी फेमिनिज़्म इन इंडिया, 2025।

तुलसीराम, मुर्दहिया (नवीन संस्करण), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023।

हर्षा वर्मा, "मुर्दहिया आत्मकथा समीक्षा", हिन्दीकुंज, 2015।

अमित कुमार, "लोकजीवन और मुर्दहिया का प्रतिनिधित्व", Aaj Tak, 2019।

तुलसीराम, मुर्दहिया (Paperback edition), BooksWagon, 2012।

देवेंद्र कुमार गोरा, "Dalit experience in autobiography: A comparative study of Government Brahmana and Murdahiya", MPhil Thesis, 2014।

डॉ. तुलसीराम, "Tulsi Ram ki Atmkatha: Murdahiya aur Manikarnika", Bayan Journal, 2016।

रेखा सिंह, "डॉ. तुलसीराम सामाजिक बदलाव और शिक्षा", मीडियामोरचा, 2015।

तुलसीराम, Murdahiya Audiobook, जारी 2018।